सन्तमत-सिद्धान्त

१. जो परम तत्त्व आदि-अन्त-रहित, असीम, अजन्मा, अगोचर, सर्वव्यापक और सर्वव्यापकता के भी परे है, उसे ही सर्वेश्वर सर्वाधार मानना चाहिए तथा अपरा (जड़) और परा (चेतन); दोनों प्रकृतियों के पार में, अगुण और सगुण पर, अनादि-अनन्त-स्वरूपी, अपरम्पार शक्तियुक्त, देशकालातीत, शब्दातीत, नाम-रूपातीत, अद्वितीय, मन-बुद्धि और इन्द्रियों के परे जिस परम सत्ता पर यह सारा प्रकृति-मण्डल एक महान यन्त्र की नाई परिचालित होता रहता है, जो न व्यक्ति है और न व्यक्त है, जो मायिक विस्तृतत्व-विहीन है, जो अपने से बाहर कुछ भी अवकाश नहीं रखता है, जो परम सनातन, परम पुरातन एवं सर्वप्रथम से विद्यमान है, सन्तमत में उसे ही परम अध्यात्मपद व परम अध्यायत्म स्वरूपी परम प्रभु सर्वेश्वर (कुल्ल मालिक) मानते हैं।

२. जीवात्मा सर्वेश्वर का अभिन्न अंश है।

३. प्रकृति आदि-अन्त सहित है और सृजित है।

४. मायाबद्ध जीव आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है। इस प्रकार रहना जीव के सब दुःखों का कारण है। इससे छुटकारा पाने के लिए सर्वेश्वर की भक्ति ही एकमात्र उपाय है।

५. मानस जप, मानस ध्यान, दृष्टि-साधन और सुरत-शब्द-योग द्वारा सर्वेश्वर की भक्ति करके अन्धकार, प्रकाश और शब्द के प्राकृतिक तीनों परदो से पार जाना और सर्वेश्वर से एकता का ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष पा लेने का मनुष्य मात्र अधिकारी है।

६. झूठ बोलना, नशा खाना, व्यभिचार करना, हिंसा करनी अर्थात् जीवों को दुःख देना वा मत्स्य-मांस को खाद्य पदार्थ समझना और चोरी करनी; इन पाँचों महापापों से मनुष्यों को अलग रहना चाहिए।

७. एक सर्वेश्वर पर ही अचल विश्वास, पूर्ण भरोसा तथा अपने अन्तर में ही उनकी प्राप्ति का दृढ़ निश्चय रखना, सद्गुरु की निष्कपट सेवा, सत्संग और दृढ़ ध्यानभ्यास; इन पाँचों को मोक्ष का कारण समझना चाहिए।

सन्तमत की परिभाषा

१. शान्ति स्थिरता वा निश्चलता को कहते हैं।

२. शान्ति को जो प्राप्त कर लेते हैं, सन्त कहलाते हैं।

३. सन्तों के मत वा धर्म को सन्तमत कहते हैं।

४. शान्ति प्राप्त करने का प्रेरण मनुष्यों के हृदय में स्वाभाविक ही है। प्राचीन काल में ऋषियों ने इसी प्रेरणा से प्रेरित होकर इसकी पूरी खोज की और इसकी प्राप्ति के विचारों को उपनिषदों में वर्णन किया। इन्हीं विचारों से मिलते हुए विचार को कबीर साहब और गुरु नानक साहब आदि सन्तों ने भी भारती और पंजाबी आदि भाषाओं में सर्वसाधारण के उपकारार्थ वर्णन किया। इन विचारों को ही सन्तमत कहते हैं; परन्तु सन्तमत की मूल भित्ति तो उपनिषद् के वाक्यों को ही मानने पड़ते हैं; क्योंकि जिस ऊँचे ज्ञान का तथा उस ज्ञान के पद तक पहुँचाने के जिस विशेष साधन नादानुसन्धान अर्थात् सुरत-शब्द-योग का गौरव सन्तमत को है, वे तो अति प्राचीन काल की इसी भित्ति पर अंकित होकर जगमगा रहे हैं। भिन्न-भिन्न काल तथा देशों में सन्तों के प्रकट होने के कारण तथा इनके भिन्न-भिन्न नामकरण होने के कारण सन्तों के मत में पृथकत्व ज्ञात होता है; परन्तु यदि मोटी और बाहरी बातों को तथा पन्थाई भावों को हटाकर विचारा जाय और संतों के मूल एवं सार विचारों को ग्रहण किया जाय तो, यही सिद्ध होगा कि सब सन्तों का एक ही मत है।